तन्त्र-विवेचन

(मकार-पंचक)

[प्रश्नोत्तर]

187

लेखक

'कुलज्ञ' स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती,

सुरतगिरि बँगला, कनखल (हरिद्वार)

प्रकाशक

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक

शाक्त साधना पीठ

प्रयाग-६

तन्त्र-विवेचन

(मकार-पंचक)

[प्रश्नोत्तर]

Dr. B. N. Pandit, Shastri
M. A. M. O. L.
Ph. D. in Kashmir Saivism

लेखक

'कुलज्ञ' स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती,

सुरतगिरि-बङ्गला, कनखल (हरिद्वार)

प्रकाशक

शाक्त-साधना-पीठ

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

प्रथम संस्करण] सम्वत् २०३२

MOTILAL BANARSIDASS
JAWAHAR NAGAR
DELHI-7
BUNGALOW ROAD

9/40

अनुक्रमणिका

१—भूमिका क

२—परिचय ग

३—तत्व-विवेचन (मकार-पंचक) १

४—परिशिष्ट १८

(अ) चण्डी के दो सम्पादकीय

(ब) मांस-भक्षण पर व्यावहारिक उपयोगी चर्चा

५—कौल-धर्म क्या है ? २३

शक्ति विना महेशानि सदाहं शव-रूपकः ।
शक्ति-युक्तः सदा देवि शिवोऽहं सर्व-कामदः ॥
वेद-शास्त्र-पुराणानि, सामान्य-वनिता इव ।
अयं तु शाम्भवी विद्या, गुप्ता कुल-वधूरिव ॥

परन्तु

कले प्राबल्य-समये, सर्व-धर्म-विवर्जिते ।
गोपनात् कुल-धर्मस्य, कौलोऽपि नारकी भवेत् ॥

पूज्य स्वामीजी कृत अन्य पुस्तकें

१ प्रवृत्ति में निवृत्ति—गृहस्थ आश्रम में रहते हुये मोक्ष किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है, इसका स्पष्टीकरण इस अनूठी पुस्तक में किया गया है। पृष्ठ लगभग २०० मूल्य, रु० ५-००।

२ यत्र तत्र सर्वत्र—जहां तहां सब स्थानों में जिस तत्व-ज्ञान के जानने के लिये सभी लोग सदा उत्सुक पाये जाते हैं, उसी 'शक्ति-तत्व' का रहस्योद्-घाटन इस पुस्तिका में प्रश्नोत्तर-शैली में किया गया है। पृष्ठ लगभग १२५, मूल्य रु० ३.००।

३ दिव्य दृष्टान्तावली—दीपावली, होली, नवरात्र-उत्सवों का रहस्य, कर्मों की गति, स्त्रियों के चरित्र, होनहार, दुःख का कारण, काम और क्रोध, अतिथि-सत्कार, माया का स्वरूप जैसी ज्ञातव्य बातों पर चुटीले व रोचक दृष्टान्तों से परिपूर्ण ग्रन्थ। पृष्ठ लगभग २००, मूल्य रु० ४-००।

४ शक्ति सुयश—विविध राग-रागिनियों में १५० से अधिक भजन, दोहे, चौपाई, छन्द, कवित, सवैया से परिपूर्ण एक अनूठा काव्य ग्रन्थ। पृष्ठ लगभग १२५, मूल्य रु० ३-००।

५ आगमोक्त योग-साधना—इस बीसवी शती में, जब मानव का मानव शत्रु बन रहा है और दानवता का बोलबाला है, एक नई जागृति तथा चेतना को प्रस्फुटित करना होगा, अपनी संस्कृति के मूल-भूत नैतिक शाश्वत मूल्यों को पुनः वर्तमान कसौटी पर कस कर खरा सिद्ध करना होगा। यह कार्य केवल सन्त ही कर सकते हैं; क्योंकि उनका जीवन व्यक्तिगत स्वार्थों से परे होता है। वे तो पर-हित के लिये ही जीवित रहते हैं। 'सर्व-भूत-हिते रताः' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' ही जिनका लक्ष्य है। यह पुस्तक एक ऐसे ही सन्त का इस दिशा में उठाया हुआ एक नया पग है। पृष्ठ ४८, मूल्य २-००।

६ नवरात्र महोत्सव एवं शक्ति उपासना—पृष्ठ ३२, मूल्य ५० पैसे

कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

भूमिका

मुख्य तत्व पाँच कहे गये हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। इन्हीं पंच तत्त्वों से विराट् ब्रह्मांड बना है और इन्हीं के द्वारा प्राणी मात्र की रचना हुई है। ये तत्व महामाया (मूल प्रकृति) की कृति हैं। इनमें पोषक और संहारक दोनों शक्तियां विद्यमान हैं। अतः इनका उपयोग यदि उचित रीति से नहीं किया गया, तो ये ही बजाय लाभदायक होने के हानिकारक भी सिद्ध हो सकते हैं। जैसे अग्नि का स्वभाव है जलाना, प्रकाश देना, ठंड से बचाना तथा अन्न को पकाना, पचाना आदि। परन्तु यदि कोई जाने अनजाने अपना हाथ अग्नि में डाल दे, तो क्या वह अग्नि उस हाथ को जलाये बिना रह सकती है? कदापि नहीं। इसी प्रकार अन्य सब तत्वों का अपना अलग-अलग स्वभाव है। अतः इनका विधिवत् प्रयोग करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। इसी उद्देश्य से भगवान् शङ्कर ने इन स्थूल तत्वों का उपयोग समझाने के लिये स्थूल रूप में मदिरा (अग्नि-तत्व), मांस (वायु-तत्व), मीन (जल-तत्व), मुद्रा (पृथ्वी-तत्व) और मैथुन (आकाश-तत्व) का आविर्भाव पंच-मकारों के नाम से तन्त्र-शास्त्र में किया है तथा इन तत्वों का सेवन-विधान भी बतलाया है। यदि इनका सेवन विधिवत् नहीं हुआ, तो सेवन करनेवाले की वही दशा होगी, जो अग्नि में हाथ डालनेवाले की होती है।

प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं पंच-मकारों का विशद् विवरण प्रश्नोत्तर के रूप में देखने के लिये मिलेगा। आशा है कि शाक्त साधक

इससे अवश्य लाभान्वित होंगे। पंच-मकारों की दार्शनिक व सूक्ष्म व्याख्याओं को जानने के लिये मेरी पुस्तकें 'यत्र तत्र सर्वत्र' एवं 'योग-साधना' (कुण्डलिनी योग) पठनीय हैं।

मैं यहाँ उन लेखक महोदयों को धन्यवाद देना भी अपना कर्तव्य मानता हूँ, जिनकी पुस्तकों से मैंने इस पुस्तक के निर्माण में सहायता ग्रहण की है।

२०-३-७४

—लेखक

परिचय

शाक्त-साधना में पञ्च-मकारों का विशेष स्थान है। ये पाँच मकार पञ्च महाभूतों के प्रतिनिधि-स्वरूप हैं। इन्हें पञ्च-तत्व की भी संज्ञा प्राप्त है। प्राय: लोग इनके महत्व को भले प्रकार हृदयङ्गम नहीं कर पाते। साधना में इनकी उपयोगिता को समझाने के लिए विज्ञ पुरुषों द्वारा इनकी अनेक प्रकार से व्याख्या की गई है। किसी ने इनका विवेचन दार्शनिक रूप से किया है, तो किसी ने वैज्ञानिक ढंग से इन्हें स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

पूज्य स्वामी दिव्यानन्द जी ने अपनी इस पुस्तिका में प्रश्नोत्तर के रूप में उक्त तत्वों को समझाने का सफल प्रयत्न किया है। इन तत्वों के सम्बन्ध में सामान्य रूप से जो शङ्काएँ जिज्ञासु जनों के मन में उठा करती हैं, उन्हीं को प्रश्न-रूप में लेकर पूज्य स्वामी जी ने उनका उत्तर अति सरल सुबोध भाषा में लिखा है। प्रश्नोत्तर की इस शैली से पञ्च-तत्व-सम्बंधी अनेक शङ्काओं का समाधान सहज ही हो जाता है और जिज्ञासु जन पञ्च-मकारों के वास्तविक महत्व को सरलता से हृदयङ्गम कर लेते हैं।

मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन—इन पाँच मकारों का उपयोग कौल साधना में किस उद्देश्य से निर्दिष्ट हुआ है, इसका रहस्य इस पुस्तिका को ध्यान से पढ़ने से प्रामाणिक रूप से पाठक की समझ में आ जाता है।

यह रहस्योद्घाटन रुद्रयामल, ब्रह्मयामल, योगवाशिष्ठ, कालिका-पुराण, श्रीमद्भगवद्गीता, श्री दुर्गा सप्तशती, नारद-पञ्चरात्र, शतपथ ब्राह्मण,

ऋग्वेद, तैत्तिरीय संहिता, ऐतरेय ब्राह्मण, कात्यायन-श्राद्ध-कल्प-सूत्र, ब्रह्माण्ड-पुराण, मनुस्मृति, भविष्य-पुराण, लिङ्ग-पुराण, मार्कण्डेय-पुराण, श्रीमद्भागवत्-पुराण, कुलार्णव तन्त्र जैसे आर्ष ग्रन्थों पर आधारित है।

यह पुस्तिका लिखकर पूज्य स्वामी जी ने वास्तव में जिज्ञासु साधकों का बड़ा उपकार किया है। हमें विश्वास है कि इसकी सहायता से बहु-संख्यक पाठकों की अनेक भ्रान्तियों का निवारण होगा और वे संशय-रहित होकर शक्ति-साधना में अग्रसर हो सकेंगे।

२९-५-७५ —'कुलभूषण' पं० रमादत्त शुक्ल
चण्डी कार्यालय, प्रयाग-६ एम० ए०

तन्त्र-विवेचन

(मकार पंचक)

प्रश्न सुनते हैं कि श्री वशिष्ठ मुनि ब्रह्मा जी के मानस पुत्र थे ?

उत्तर हाँ, वे ब्रह्मा जी के मानस पुत्र थे।

प्र० ब्रह्माजी के अन्य मानस पुत्र जैसे नारद, सनत् कुमार आदि ने तो संसार को मिथ्या समझकर तपश्चर्या के निमित्त वन गमन किया और भोगों का सर्वथा त्याग किया। वशिष्ठ जी ने ऐसा क्यों नहीं किया, वे भी तो ब्रह्मा जी के मानस पुत्र ही थे ? कहते हैं कि उनके तो स्त्री-पुत्र थे ?

उ० आपका यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। इसका रहस्य यदि जानना हो तो आपको रुद्रयामल तन्त्र तथा ब्रह्म यामल ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये। इनमें वशिष्ठ तथा बुद्ध की कथा पढ़ने योग्य है।

प्र० वह कथा किस प्रकार है ? आप ही सुना दीजिये।

उ० सुनिये, कथा इस प्रकार है—"ब्रह्मा जी के पुत्र वशिष्ठ जी ने एकान्त स्थल में रह कर अत्यन्त कठोर तप किया। ६००० वर्ष तक कठोर तप करने पर भी उन्हें गिरिजा का साक्षात्कार नहीं हुआ। वे खिन्न होकर ब्रह्माजी के पास गये और प्रार्थना की—'मुझे कोई अन्य मन्त्रोपदेश कीजिये। इस विद्या से मुझे सिद्धि लाभ होता नहीं दिखता, अन्यथा मैं इसको आपके ही समक्ष कठोर शाप से शापित करूँगा।' ब्रह्मा जी ने उन्हें रोककर उत्तर दिया—'हे योगदत्त पुत्र ! ऐसा न करो। तुम फिर पूर्ण मनोयोग से उस जगदम्बा का अर्चन करो, तभी वह प्रत्यक्ष होकर तुम्हें वर प्रदान करेगी। वह महाशक्ति सब दुःखों से त्राण करनेवाली है।

वह करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान, करोड़ों चन्द्रमाओं के समान सुशीतल तथा करोड़ों तड़ित् पुञ्जों के सदृश है। महानील वर्णा है। वह काल-कामिनी सबकी आदि है। उसमें धर्माधर्म कुछ भी नहीं। वह सर्व-रूपिणी है। उसे शुद्ध चीनाचार प्रिय है। वह शक्ति-चक्र की प्रवर्त्तिका है। उसका माहात्म्य अनन्त है। वही संसार-सागर की तरणी है। वह बुद्धीश्वरी स्वयमेव बुद्धि-रूपा है। वह अथर्ववेद साक्षिणी है। पुत्र ! तुम क्यों इतने उतावले होकर शाप देने को तैयार हुये हो ! उस महाशक्ति की अनन्य-चेता होकर उपासना करो। अवश्य वह तुमको दर्शन देगी।'

अपने गुरु के इन वचनों को सुनकर वशिष्ठ जी फिर तपस्या करने समुद्र-तट पर चले गये। पूरे एक सहस्र वर्ष फिर उन्होंने मन्त्र का जप किया, परन्तु उनको कोई आदेश न मिला। मुनि ने क्रुद्ध होकर महाविद्या (तारा) को कठोर शाप दिया। इस पर कुलेश्वरी महाविद्या ने, जो योगियों के भय को नाश करनेवाली हैं, प्रकट होकर कहा—'क्यों विप्र ! तुमने निष्कारण शाप क्यों दिया ! तुम न तो मेरे कुलागम को ही समझते हो, न पूजा-पद्धति ही जानते हो; केवल योगाभ्यास से ही किस प्रकार देवता या मनुष्य मेरे चरण-कमलों का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं ? मेरी उपासना कठोर तप तथा काया-कष्ट से नहीं की जा सकती। मेरी कुलागम की उपासना पुण्यों तथा वेदों से भी ऊँची है। (अर्थात् वेद पशु-भाव-परक हैं)। महाचीन (जो बौद्ध देश है) में जाओ और अथर्ववेद के अनुसार चलो। वहाँ जाकर चीनाचार से उपासना करने पर तुमको मेरे पद-कमलों (जो स्वयं ही महाभाव हैं) का साक्षात्कार होगा और तुम कुल-ज्ञानी तथा महासिद्ध बन सकोगे।'

यह कह कर भगवती अन्तर्धान हो गई। महाविद्या सरस्वती (नील सरस्वती) से यह सुनकर वशिष्ठ मुनि महाचीन में गये, जहाँ बुद्ध भगवान् प्रतिष्ठित हैं और बुद्ध भगवान् को बार-बार प्रणाम करके मुनि ने कहा—'हे बुद्ध-रूपी शङ्कर ! मैं ब्रह्मा का पुत्र वशिष्ठ आपकी शरण

में आया हूँ। मेरा मन भ्रम-पूर्ण है। मैं यहाँ महादेवी की साधना करने आया हूँ। मैं सिद्धि-प्राप्ति के मार्ग से अनभिज्ञ हूँ। आप दिव्याचार के ज्ञाता हैं। परन्तु आपके आचार को देख कर मेरे हृदय में नाना प्रकार के भय उत्पन्न हो रहे हैं। (वशिष्ठ जी ने यहाँ पंच मकार--मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन का सेवन देखा)। मेरे मन से, जो वैदिक आचारों की तरफ झुका हुआ है, इन भयों को दूर कीजिये। हे महाराज! आपके स्थान में तो मैं वेद-वहिष्कृत आचारों का ही प्राधान्य देख रहा हूँ। (मुनि को उस समय यही विश्वास था कि ये आचार वेद-विरुद्ध हैं)। यह क्या बात है कि श्रेष्ठ दिगम्बर सिद्धगण रक्त-पानोद्यत होकर मद्य-मांस का सेवन कर रहे हैं और रूपवती रमणियों से केलि कर रहे हैं? सर्वदा मांसासव से पूर्ण तृप्त होकर इनकी आँखें लाल हो रही हैं! ऐसे महा सिद्धों के, जो प्रसन्न होने पर वर देने को और अप्रसन्न होने पर विनाश करने को समर्थ हैं, इन वेद-विरुद्ध आचारों पर किसकी श्रद्धा हो सकती है? इस प्रकार की प्रवृत्तियों से मन-शुद्धि कैसे सम्भव है! बिना वेदाचार के कैसे सिद्धि हो सकती है?

बुद्ध भगवान् बोले--हे वशिष्ठ! तुम उस कौल मार्ग को सुनो, जिसके विज्ञान मात्र से ही मनुष्य अल्प काल में रुद्र-वत् हो जाता है। मैं उस कुल-शुद्धि प्रदान करनेवाले आगम-सार को तुमसे कहूँगा।

पहले वीराचारी को शुद्ध विवेक-युक्त और सर्व प्रकार पशु-भाव-रहित होना चाहिये। पशु-संग का सर्वथा परित्याग करके एकान्त-वास करे, काम-क्रोधादिक षड्-रिपुओं को दूर करे। हठ-योग का अभ्यास करे। वेदाध्ययन करके मन को सदा औदार्यादि उन्नत वृत्तियों की ओर लगावे। प्राणायाम का अभ्यास करके क्रमशः अपनी मनोवृत्तियों को विनष्ट कर देवे। प्राणायाम का अभ्यास बढ़ाता जाय।

अभ्यास करते-करते उसकी ऐसी अवस्था हो जायगी कि उसके शरीर से स्वेद-प्रवाह होने लगेगा। यह अवस्था अधम है। इससे

उच्चतर अवस्था में शरीर काँपने लगता है, यह मध्यम अवस्था है। सर्वोच्च अवस्था में साधक भूमि से ऊँचा उठ जाता है। यह भूमि-त्याग की अवस्था परा है।

इस प्रकार प्राणायाम सिद्ध हो जाने पर साधक योगी हो जाता है। तब उसे मौनावलम्बन कर शिव, कृष्ण, ब्रह्मा प्रभृति की एकान्त भक्ति करनी चाहिये और मन में ऐसी धारणा करनी चाहिये कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव वायु के समान चंचल हैं। तब साधक को अपना मन आदि शक्ति पर स्थित करना चाहिये। यह आदि-शक्ति चित्स्वरूपा है।

इसके बाद साधक को महावीर-भाव से कुलाचार के अनुसार शक्ति-चक्र, वैष्णव सत्व चक्र तथा नव विग्रह और सकल दुःख-निवारिणी सकल सुख-दायिका सर्वोत्तमा प्रत्यक्ष देवता कुल-कात्यायिनी का अर्चन करना चाहिये। यह कुल-कात्यायिनी जगज्जननी चिद्रूपा है। यही ज्ञान की आधार है। यही आनन्द की आधार है। कोटि-विद्युत्प्रतीकाशा इसी महाशक्ति से सब तत्व बने हैं। यही अष्टादश भुजाओं वाली रौद्री शक्ति है, जो सुरा तथा मांस के पर्वतोपम ढेरों को पसन्द करती है। मनुष्य को उसकी शरण में रहकर कुल-मार्ग से उसके मन्त्र की साधना करनी चाहिये।

त्रैलोक्य में कौन ऐसा है, जो इस मार्ग से अन्य मार्ग बता सकता है! इसी मार्ग से साधना कर जगदम्बा की कृपा से ब्रह्मा लोकों की उत्पत्ति, विष्णु स्थिति और शिव संहार करने को समर्थ हैं। इसी वीराचार के प्रताप से दिक्पाल भी रुद्रोपम हो गये। वीर भाव से साधना करने पर एक ही मास में आकर्षिणी सिद्धि प्राप्त हो जाती है। दो मास के अभ्यास से साधक दिग्पालोपम, पाँच मास के अभ्यास से कामदेव के समान और छः मास में रुद्र के समान हो जाता है।

इस आचार का फल अन्य सभी आचारों से उत्कृष्टतम है। इसको शक्ति-सहित करे, तो ब्राह्मण छः मास में पूर्ण योगी हो जाय। बिना

शक्ति के जब शिव भी कुछ नहीं कर सकते, तो बहुत थोड़ी बुद्धिवाले मनुष्यों के विषय में क्या कहा जाय !

इस प्रकार कह कर बुद्ध-रूपी शङ्कर ने वशिष्ठ मुनि से वीराचार साधन कराया और मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा शक्ति इन पञ्च मकारों से जगदम्बा का अर्चन करने से वे पूर्ण योगी हुये ।

प्र० प्रश्न तो यह था कि वशिष्ठ जी ने विवाह कर संतानोत्पत्ति की या नहीं अर्थात् उन्होंने प्रवृत्ति मार्ग को अपनाया या नहीं । आपके कथानक से यह स्पष्ट नहीं है कि उन्होंने गृहस्थाश्रम किया, एकदम निवृत्ति मार्ग के अनुयायी नहीं हुये ।

उ० यह बात तो शास्त्रों में प्रसिद्ध है कि वशिष्ठ जी ने विवाह किया, उनकी स्त्री का नाम अरुन्धती था । उनके कई पुत्र भी हुये । वे प्रवृत्ति मार्ग के पोषक थे । उनके योगवाशिष्ठ ग्रन्थ (जिसको महारामायण भी कहा जाता है) से स्पष्ट है कि दशरथ-नन्दन भगवान् रामचन्द्र जी को जब वैराग्य हो गया और गृहस्थाश्रम छोड़ कर वे संन्यास लेने के लिये उद्यत हो गये तो राजा दशरथ के कहने पर वशिष्ठ जी ने श्री राम जी को उपदेश देकर उन्हें राज्य करने तथा प्रवृत्ति मार्ग को स्वीकार करने के लिये बाध्य किया था ।

प्र० उपर्युक्त कथानक में कहा गया है कि बुद्ध-रूपी शङ्कर ने वशिष्ठ मुनि से वीराचार का साधन कराया और मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा शक्ति (मैथुन) द्वारा भगवती का अर्चन करने पर वे पूर्ण योगी हुये । यहाँ भी प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्यों ऐसे गन्दे लोक-विगर्हित पदार्थों से देवताओं का पूजन किया जाता है ?

उ० यदि विद्वत्समाज जरा बारीकी से धर्म-शास्त्रों का अध्ययन और मनुष्य के नित्य के सामाजिक जीवन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करे, तो उसे पता लग जायगा कि ये पाँच मकार मानव की भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिये आवश्यक हैं और सभी धर्मों ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप

से इनका प्रतिपादन किया है।

सर्व-प्रथम मैथुन को ही लीजिये। कालिका पुराण का कथन है कि "जब ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न की, तब उनके हृदय की अत्यन्त कोमल भावना के फल-स्वरूप एक त्रैलोक्य-मोहिनी रमणी उत्पन्न हुई, जिसको देखकर ब्रह्माजी के मानस पुत्रों का क्या कहना, स्वयं ब्रह्माजी विचलित हो उठे और इसके फलस्वरूप एक त्रैलोक्य-मोहन पुरुष गौर वेश में इक्षु-धनुष तथा पाँच पुष्प वाणों से सज्जित होकर ब्रह्माजी के मानस से उत्पन्न हुआ। ब्रह्माजी ने स्त्री का नाम 'रति' तथा पुरुष का नाम 'काम' रख कर दोनों को विवाहित कर दिया। इसी रति-काम मिथुन में सृष्टि का आदि भाव अन्तर्निहित है। रति-काम के उत्पन्न होने से पूर्व ब्रह्मा जी मानसी सृष्टि करते थे, पर इस कार्य में भरोसा ही क्या था! प्रचोदना तो कुछ थी ही नहीं। जगज्जननी ने यह देख कर अपनी स्व-शक्तियों से रति-काम को उत्पन्न किया, जिससे उसकी सृष्टि चलती रहे। संसार के जन्तु मात्र काम के कोमल पुष्प-शरों से विद्ध हो बर-बस सृष्टि उत्पन्न करने को बाध्य हों। फिर इस संभोगानन्द के वशवर्ती होकर बनाये हुये इस संसार-चक्र में घूमते रहें। यही जगदम्बा की इच्छा है। गीता में कहा है—

ईश्वरः सर्व-भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्व-भूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

अर्थात् परमात्मा (जगज्जननी) सब प्राणियों के हृदय-देश में विराज कर उन्हें अपने यन्त्र-माया में बैठाकर घुमाते रहते हैं।

जगज्जननी की यह आज्ञा है कि गृहस्थ बनो और सन्तानोत्पत्ति करके उसका पालन करो, न कि संसार त्याग कर संन्यासी बन जाओ। जगज्जननी अपनी भिन्न-भिन्न शक्तियों से जीव का आकर्षण करके संसार में प्रवृत्त करती हैं। इसीलिये 'श्री दुर्गा सप्तशती' में सुमेधा ऋषि ने राजा सुरथ से कहा है:—

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥

अर्थात् वह महामाया भगवती बड़े-बड़े ज्ञानियों के चित्तों को बल-पूर्वक खींच कर उन्हें मोह में डाल देती है।

किसी भी धर्म ने सम्भोग को निन्दनीय नहीं कहा है। स्त्री-पुरुष का विवाह-संस्कार इसी के लिये तो होता है। यदि यह बन्द कर दिया जाय, तो सृष्टि ही कैसे चले? सृष्ट्युत्पत्ति प्रकृति और विनाश विकृति है। अपने विपरीत चलनेवाले को प्रकृति कैसे सह सकती है? संभोग प्राकृतिक कर्म होने से उत्तम कर्म सिद्ध है। जब यह प्रत्येक प्राणी के लिये आवश्यक प्राकृतिक कार्य है, तो इसका करना प्रकृति (जगदम्बा) पूजन ही तो है। पूजन का अर्थ है 'पूजित का परितोष', न कि गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि द्वारा देव-प्रतिमा का पूजन।

विवाह संभोग के ही लिये होता है, इसके लिये व्यर्थ की दलील करना पिष्ट-पेषण मात्र ही है। सारे संसार के अब तक के प्रचलित धर्म-ग्रन्थों में देखिये, आपको मिलेगा कि इतने अधिक आडम्बर तथा उत्सव और पूजनोपचार के साथ मनुष्य का कोई संस्कार नहीं होता, जितना विवाह-संस्कार में किया जाता है। यदि यह संस्कार निंदित ही होता, तो उसके लिये इतना आडम्बर और उत्सव करने की क्या आवश्यकता थी? हमारे आर्य ग्रन्थों के अनुसार सम्भोग एक यज्ञ है। आजकल हिन्दू अग्निहोत्रियों का जो कर्म-कांड प्रचलित है, उसमें भी यज्ञ के समय जब अग्नि-स्थापन किया जाता है, तब अपने देवता के कामोन्मत्त तथा उसकी शक्ति के ऋतुमती होने की कल्पना की जाती है। यज्ञ-वेदी अथवा कुण्ड को देवी की योनि और उसमें जो अग्नि स्थापन की जाती है, उसको देवता का वीर्य माना जाता है और इसे अग्नि का गर्भाधान-संस्कार कहते हैं। नारद पञ्चरात्रोक्त होम-विधि के अनुसार लक्ष्मी को ऋतुमती कल्पना करे और विष्णु को संभोगोद्यत और तब अरणी-जन्य अग्नि

को विष्णु-वीर्य समझकर और यज्ञ-कुण्ड को लक्ष्मी की योनि समझकर जमीन में घुटने टेक कर अग्नि-कुण्ड में डाले ।

तात्पर्य यह कि कोई भी धर्म आज तक संसार में ऐसा नहीं हुआ, जिसने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इसका समर्थन न किया हो । संसार भर में भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जहाँ ऐसे मत-मतान्तर भी हैं, जिनमें प्रत्यक्ष रूप से इसकी निन्दा की गई है, परन्तु परोक्ष रूप से इसका प्रतिपादन किया है । बौद्ध और जैन मत में यद्यपि ससार-त्याग ही धर्म है और गृहस्थी करना पाप है परन्तु इन धर्मों के धर्म-गुरुओं को भी गृहस्थों को अपना चेला बनाना पड़ा । बौद्धों ने तो वाम-मार्ग को इतना अधिक ग्रहण किया है कि शायद ही कोई बौद्ध ग्रन्थ हो, जिसमें वीराचार तथा पञ्च-मकार की महिमा न गाई गई हो । इस प्रकार स्पष्ट है कि स्त्री-सम्बन्ध सब धर्मों, समाजों और जातियों में अच्छा कार्य ठहराया गया है और जिन धर्मों (जैन, बौद्ध) ने इसको बुरा बताया है, वे भी और उनके अनुयायी भी इसको नहीं छोड़ सके, बल्कि इस समय तो जैन और बौद्ध धर्मावलम्बी ब्रह्मचारी बहुत ही कम देखने में आते हैं ।

प्र० हाँ, मैथुन-सम्बन्धी शंका का तो निराकरण हो गया । यह तो शास्त्रोक्त एक पावन कृत्य है । पर मदिरा या सुरा-पान तो महा पाप है । मद्य-मांस उत्तेजक भोजन ही नहीं, हिंसा भी है । ये क्यों कर उत्तम समझे जा सकते हैं ?

उ० संसार के सभी धर्मों का स्रोत वेद हैं । इसके परे स्मृतियाँ, पुराण, इतिहास आदि अन्य शास्त्र । तन्त्र-ग्रन्थों में तो पञ्चमकारों का विषद् वर्णन मिलता है । निम्नांकित प्रमाणों से मद्य-मांस के उपयोग का प्रश्न स्पष्ट हो जायगा—

वैदिक आर्य सोम यज्ञ तथा हविर्यज्ञ किया करते थे, जिनमें एक सौत्रामणि था, जिसमें मद्य से यज्ञ-पूजनादि होता था और मद्य-पान

होता था (शतपथ ब्रा० ५-१-१३)। शतपथ ब्राह्मण में यह भी कहा है कि मद्य यजमान को पवित्र करता है और मद्य स्वयं ही पवित्र है। ऋग्वेद पाँचवें मण्डल में ऋषि काशिवान ने मद्य की बहुत प्रशंसा की है। तैत्तिर्य संहिता (३-१-४) में पशु के मांस को हवि कहा है। ऋग्वेद संहिता ५-२-२२ में अग्नि में पशु के मेद का होम करने का विधान कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण (६-८) के अनुसार आर्यगण नरबलि, अश्वालम्भ आदि भी करते थे। कात्यायन श्राद्ध-कल्प-सूत्र की कण्डिका ७ तथा ८ में श्राद्ध हवि की पूरी सूची दी गई है। छाग, उष्ट्र, मेष, मत्स्य, हरिण, मेढ़ा, बछुआ, वराह, महिष इत्यादि स्थल, जल तथा नभ-चर प्राणियों के माँस को श्राद्ध-हवि बतलाया गया है। इनके मांस से पितरों को अक्षय तृप्ति होती है। इन्हीं को स्मृतिकारों ने श्राद्ध हवि माना है। वैदिक ग्रन्थों में एक नहीं सहस्रों प्रकरण मद्य-मांस के प्रयोगों के हैं। उपर्युक्त थोड़े से उद्धरण उदाहरण-स्वरूप दिये गये हैं। विशेष जानने के लिये ब्राह्मण ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक है।

ब्रह्मांड पुराण अध्याय १९ में श्राद्ध हवि में मांस-मत्स्य का प्रयोग वैसा ही बताया है, जैसा कि मनुस्मृति में (देखिये श्लोक २ से ९ तक)। भविष्य पुराण, ब्राह्मण पर्व, अ० १७३ में श्रीकृष्ण का अपनी रानियों के साथ द्वारिकापुरी में मद्य-पानादि का वर्णन है। लिंग पुराण, पूर्व भाग, अध्याय ७८ में लिखा है कि यज्ञ में पशु-हिंसा धर्म है और यज्ञीय पशु स्त्री नहीं होना चाहिये।

मार्कंडेय पुराणान्तर्गत दुर्गा सप्तशती में स्वयं देवी ने अपने श्री मुख से कहा है—'पशु, पुष्प, धूप, दीप से मेरी पूजा करनी चाहिये'—अ० १२।

महिषासुर-युद्ध में देवी ने मद्य-पान किया और फिर नशे से लड़खड़ाती वाणी में महिषासुर को डांटा—अ० ३।

श्रीमद्-भागवत पुराण, स्कन्ध ४, अ० २५, श्लोक ६ में लिखा है—'धार्मिक कार्यों के निमित्त राजा मृगया में मेध्य (जिनका मांस खाने

योग्य हो) पशुओं का उतनी ही संख्या में वध करे, जितना पर्याप्त हो।

लोभ-वश आवश्यकता से अधिक का वध न करे, यह नियम है। इस भागवत ५-१५-१२ में लिखा है, 'राजा गय के यज्ञ में देवराज इन्द्र इतना अधिक सोम पान किया कि वे उन्मत्त हो गये'। श्रीमद्भागवत १ (उत्तरार्ध) ६५, श्लोक १६-२० में देखिये—

'जब श्री बलराम जी गोपियों के साथ ब्रज-बनों में यमुना के ती भ्रमण कर रहे थे, तब उनके लिये वरुण ने वारुणी देवी (सुरा) को वृक्ष कोटर में भेजा। उसकी उन्मत्त करनेवाली गन्ध को, जो वायु फैल रही थी, सूँघ कर ब्रज की स्त्रियों के साथ बलराम जी वृक्ष-कोट पर पहुँचे और स्त्रियों के साथ उस वारुणी को पिया, जिससे नशे कारण उनके नेत्र विह्वल हो गये।' पुनः श्रीमद् भागवत ११-३० श्लोक १२-१३ से स्पष्ट है कि यादवों ने प्रभास क्षेत्र में एकत्रित होक मैरेय नाम की मद्य पी और उससे मदोन्मत्त होकर आपस में लड़कर नष्ट हो गये।

प्र० हाँ, तन्त्र-गन्थों के अनुसार तो देवी की उपासना में मद्य-मांस क उपयोग उपयुक्त समझा जा सकता है, पर वैष्णव मतानुसार तो मद्य-मांस कदापि वैध नहीं समझे जा सकते। वैष्णव लोग इन वस्तुओं को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते हैं। शाक्तों के लिये तो भले ही उपयोगी हों।

उ० वैष्णव लोग यद्यपि इन वस्तुओं को जघन्य पाप समझते हैं, पर भारतवर्ष में प्रसिद्ध वैष्णव पीठ, जो श्री जगन्नाथ पुरी में है, उसमें भगवान् को जो भोग लगता है, वह मद्य से प्रोक्षित किया जाता है। यहाँ पर कलकत्ता हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस सर जान वुडरफ के ही शब्द, जो उन्होंने अपनी पुस्तक 'शक्ति एण्ड शाक्त' में लिखे हैं, यहाँ उद्धृत कर देना उचित होगा। वे लिखते हैं—

'I may here mention in this connection tha

not only are drops of wine sometimes sprinkled and consumed by persons who are not Virac hari but (though this is not generally known and will perhaps not be admitted) on the Prasad which all con sume at the Vaishnawa shrine of Jagannath at Puri'.

—Shakti and Shakta, Page 346.

अर्थात् इस प्रसंग में मैं यह लिखना भी उचित समझता हूँ कि दुर्गा-पूजा के अवसर पर तो देवता का प्रसाद मद्य से प्रोक्षित किया ही जाता है और इस प्रसाद को शाक्त ही नहीं पर शाक्तातिरिक्त लोग भी ग्रहण करते हैं परन्तु पुरी के जगन्नाथ जी के मन्दिर में भी प्रसाद पर मद्य छिड़का जाता है (यद्यपि इस बात को सर्व-साधारण नहीं जानते)।

इसी बात को देखते हुये श्रीमद्भागवत (जो वैष्णवों का प्रमुख ग्रन्थ है) को भी यह मत स्थिर करना पड़ा कि :—

लोके व्यवायामिव मद्य-सेवा नित्यास्ति जन्तोर्नहि तत्र चोदना।
व्यवस्थितस्तेषु विवाह-यज्ञ सुराग्रहैराशु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११-५-११

अर्थात् इस दुनिया में किसी से यह कहना नहीं पड़ता कि तुम संभोग, मांस और मदिरा का सेवन करो। ये बातें मनुष्य को स्वभाव से ही प्रिय हैं। इन तीनों की कुछ व्यवस्था कर देने के लिये अर्थात् इनका उपयोग कुछ मर्यादित करने के लिये (शास्त्रों ने) अनुक्रम से विवाह, सोम-याग और सौत्रामणि यज्ञ की योजना की है। परन्तु इस पर भी निवृत्ति इष्ट है। इसी आशय की आज्ञा मनुस्मृति ग्रन्थ में मिलती है। मनु महा-राज ने कहा है--

'न मांस-भक्षणे दोषः न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषां भूतानाम् निवृत्तिस्तु महत् फलम् ॥'

प्र० हिन्दू धर्म के अतिरिक्त भी तो संसार में अनेक धर्म हैं। क्या उनमें मद्य-मांस को वैध माना है ?

उ० ईसाई-मुसलमान, यहूदियों के भी यही हाल हैं। ईसाई और यहूदियों ईश्वर की पूजा में मांस-मद्य का प्रयोग होता है। मुसलमानों में यह इह लोक में मद्य-सेवन वर्जित है, परन्तु स्वर्ग में मुसलमानों को मद्य को मिलती है। माँस के विषय में कहना ही क्या है ! इनके बकरीद त्योहार से सभी परिचित हैं।

अब स्पष्ट हो गया होगा कि पञ्चमकार का सेवन किसी भी में निन्दनीय नहीं है। हाँ, इनका अमर्यादित उच्छृंखल सेवन नहीं हो चाहिये। सम्भोग अपनी पत्नी से करना चाहिये, पर-पत्नी से नहीं मद्य-मांसादिक (अन्य मकार-चतुष्टय) को अपनी जिह्वा-तृप्ति के सेवन नहीं करना चाहिये। अब ऐसी दशा में वीराचारियों की उपास में इन मकारों का प्रयोग करने के कारण उन्हें घृणा को दृष्टि से क देखा जाता है, यह समझ में नहीं आता !

कुलाचार साधना का मार्ग है। इसमें पञ्चमकार का प्रयोग केव अष्ट-पाशों का छेदन कर जीव को स्वतन्त्र उन्मुक्त करने के निमित्त किया जाता है।

प्र० आपने कहा कि पञ्चमकारों का सेवन केवल अष्ट-पाशों का छेदन क जीव को स्वतन्त्र उन्मुक्त करने के निमित्त ही किया जाता है। ये अष पाश क्या हैं, जिनसे जीव बँधा हुआ है ? उनका विवेचन कीजिये।

उ० कुलार्णव तन्त्र का कथन है—

घृणा लज्जा भयं शंका जुगुप्सा चेति पंचमं।
कुलं शीलं तथा जाति अष्ट पाशाः प्रकीर्तिताः ॥
पाश-बद्धः भवेत् जीवः पाश-मुक्तो सदाशिवः ॥

ये आठ पाश पशु-पाश कहलाते हैं। जीव इन पाशों से आबद्ध हो

के कारण पार्थिव भोगों को ही चरम सुख समझता है और संसार के आवर्त में घूमता रहता है। इस जीव को शिवत्व प्राप्त करने हेतु साधना करके इन पाशों को काटना होता है। पाश-मुक्त होने से जीव स्वयं ईश्वर हो जाता है।

साधक की जैसी मनोवृत्ति रहती है, उसी प्रकार की साधना करने से उसका श्रेय सम्भव है। जिस पर उक्त अष्ट पाशों का प्रभाव है, उसके लिये सर्वकाल और सर्वावस्था में साधन कर सकना असम्भव है। उसका मन सांसारिक पार्थिव प्रवृत्तियों के वश में होने से अध्यात्म की ओर नहीं जा सकता। अतएव जब तक चित्त निर्मल नहीं हुआ, मनोवृत्तियों पर बिजय प्राप्त न हो सकी, तब तक साधना पशु-भाव से करनी होगी। नित्य स्नान, सन्ध्या-वन्दन, आचार-शुद्धि, आहार-शुद्धि-- सब कुछ करना होगा।

पश्वाचार विशुद्ध वैष्णवाचार है और वर्णाश्रम धर्म के विधि-निषेधात्मक बन्धनों से जकड़ा हुआ है। पश्वाचारी त्रिसन्ध्य देव-पूजा, त्रिसंध्य जप करे। पशु-साधना में मद्य-मांसादि अपने प्रकृत रूप में एकदम वर्ज्य है। केवल इससे आगे की वीर-भाव की साधना में ही साधक इनके सेवन का अधिकारी है।

यह कैसे पहचाना जा सकता है कि पशु-भाव की साधना करते-करते साधक के अष्ट-पाश ढीले पड़ गये हैं और वह अब वीर-भाव की साधना का अधिकारी हो गया है?

पशु-भाव की साधना करते-करते जब पशुत्व के बन्धन ढीले पड़ जाते हैं, तब कुलार्णव में कथित निम्नांकित लक्षण साधक में उदय होने लगते हैं- साधक का हृदय आर्द्र होने लगता है। प्रसन्न, सन्तुष्ट, निर्द्वन्द्व, मात्सर्य-रहित, शान्त, जगदम्बा की भक्ति की चर्चा चलने पर जिसको रोमाञ्च हो उठे, वाणी गद्-गद् हो जाय। इन्हीं सब लक्षणों से पहचाना जा सकता है कि पशु-भाव वाला साधक अब वीर-भाव की साधना का

अधिकारी हो गया है। गुरु उसकी परीक्षा करके ही उसको वीर-म की साधना में दीक्षित करता है।

प्र० आपने ऊपर कहा है कि पञ्च-मकारों का सेवन अमर्यादित नहीं हो चाहिये। इससे आपका क्या अभिप्राय है ?

उ० अमर्यादित से अभिप्राय यह है कि पञ्चमकारों का सेवन विधिवत् करे अविधि नहीं। अविधि सेवन करना महा पाप है। यथा--

वृथा-पानं तु देवेशि सुरा-पानं तदुच्यते।
तन्महापातकम् ज्ञेयं वेदादिषु निरूपितम्॥

हे देवेशि, वृथा-पान (बेमतलब का, बिना पूजन किये) को ही मद्य पान कहते हैं और वेदादि शास्त्रों ने इसको महापातक बताया है।

तस्मादविधिना मांसं मद्यं न सेवते क्वचित्।
तृणं वाप्यविधानेन छेदयेन्न कदाचन।
विधिना गां द्विजं वापि हत्वा पापैर्न लिप्यते॥

अतएव बिना विधि के मांस-मद्य का कभी सेवन न करे। बिन विधान के तृण का भी छेदन न करे और विधि-विहित रीति से हिंस करने पर भी पाप नहीं है। कुलार्णव उ० २, १३४, । १३५ और भी कहा है—

असंस्कृतं पिबेत् द्रव्यं बलात्कारेण मैथुनम्।
अप्रोक्षितं खादयेत् मांसं रौरवं नरकम् व्रजेत्॥

अर्थात् असंशोधित मद्य-पान करने व मांस-भक्षण करनेवाला तथा बलात्कार से मैथुन करनेवाला पुरुष रौरव नरक का अधिकारी होता है।

अब बिलकुल स्पष्ट हो गया होगा कि वीर-भाव (कुलाचार) के अनुसार पंच-मकार केवल साधना में ही प्रयुक्त होते हैं और वाम-मार्ग में यदि सारा संसार प्रवेश कर जाय, तो अधिकांश लोगों का मद्य-मांस स्त्री-सेवन सदा के लिये छूट जाय। पञ्च-मकारों के सेवन के विषय में

वाम-मार्गियों के नियम अत्यन्त ही कठिन हैं और जितनी अधिक रोक इनके प्रयोग के सम्बन्ध में वीराचार की साधना से हो सकती है, उतनी अन्य धर्मों तथा आचारों की साधना से नहीं।

प्र० आपने कहा कि पञ्च-मकारों के सेवन के विषय में वाम-मार्गियों के नियम अत्यन्त ही कठिन हैं। सो ये नियम क्या हैं और इनका व्यावहारिक ज्ञान किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है? यह भी बतलाने की कृपा करें।

उ० ये नियम शाक्त-पद्धतियों में उपलब्ध हैं और इनका व्यावहारिक ज्ञान किसी भी शाक्ताचार्य गुरु द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यह शाम्भवी विद्या गुरु-गम्य है।

प्र० ऐसे शाक्ताचार्य गुरु की पहचान क्या है?

उ० जिस प्रकार योग्य गुरु की आवश्यकता है, उसी प्रकार योग्य शिष्य की भी आवश्यकता है। उनके लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं--

गुरु के लक्षण:—शास्त्रों को जाननेवाला विद्वान्, साधक, शान्त स्वभाव, दयालु, जितेन्द्रिय, गंभीर, अल्प-भाषी, संतोषी, धैर्यवान्, प्रसन्न-मुख, नित्य नैमित्तिक कार्यों में तत्पर रहनेवाला, स्त्री-धनादि में अनासक्त आदि-आदि गुणों से युक्त महापुरुष गुरु बनाने योग्य है। शिष्य के लक्षण:—रोगी, आलसी, धूर्त, व्यसनी, देश-द्रोही, छिद्रान्वेषी, कृतघ्न, विश्वासघाती, बहु-भाषी, कुतर्की, झगड़ालू, निंदक, आत्म-प्रशंसक, घमंडी, पाखंडी, आदि दोषों से युक्त व्यक्ति शिष्य बनाने के योग्य नहीं है।

प्र० उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न गुरु कहाँ और कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

उ० जिस योग्य शिष्य को जैसे योग्य गुरु की आवश्यकता हो, वह उसको खोजे। कहा है:—

जिन खोंजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी बैठ,
हूँ बौरी ढूंढ़न गई, रही किनारे बैठ॥

यदि आपका दृढ़ सङ्कल्प है और आपकी खोज अपूर्व है, तो आपको अभीष्ट

गुरु अवश्य प्राप्त होगा ।

प्र० जिन सर्व-गुण-सम्पन्न गुरु का आपने वर्णन किया है, वैसा देव-गुरु तो मानव संसार में मिलना ही असम्भव-सा प्रतीत होता है । फिर यदि हो भी, तो साधारण व्यक्ति के लिये तो उसको पहचान भी सम्भव नहीं हो सकती । ऐसी परिस्थिति में क्या करना चाहिये ?

उ० जिस प्रकार देव-दर्शन के लिये किसी मूर्ति, या चित्र या यन्त्र के प्रतीक को ग्रहण किया जाता है, ठीक उसी प्रकार किसी धर्म-परायण, कुलीन, सदाचारी, सद्-व्यक्ति महापुरुष को गुरु बनाया जा सकता है। ऐसा गुरु सहज ही प्राप्त हो सकता है ।

प्र० गुरु एक ही पर्याप्त है, अथवा अनेक भी ?

उ० भाव यह है कि शिष्य के संशय दूर करनेवाला गुरु होना चाहिये । ऐसे गुरु को पाकर दूसरे गुरु का आश्रय नही लेना चाहिये । यदि गुरु अनभिज्ञ हो और उसके द्वारा संशय (पूर्णज्ञान की प्राप्ति के लिये) का निराकरण न होता हो, तो दूसरे गुरु के पास जाने में दोष नहीं है । जिस प्रकार शहद का लोभी भौंरा एक फूल से दूसरे फूल को जाता है, उसी प्रकार ज्ञान के लोभी शिष्य को एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाना चाहिये । अवधूत दत्तात्रेय के २४ गुरु कहे जाते हैं ।

प्र० आपने कहा कि देवी-पूजा में पञ्चमकारों का उपयोग होता है । सो ये पाँच ही मकार क्यों, कम-ज्यादा क्यों नहीं हो सकते ?

उ० मुख्य तत्त्व पाँच कहे जाते हैं:—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी । इन्हीं पञ्चतत्वों से विराट् ब्रह्माण्ड बना है और इन्हीं के द्वारा प्राणी मात्र की रचना हुई है । ये तत्व महामाया (मूल प्रकृति) की कृति हैं । इनमें पोषक और संहारक दोनों शक्तियाँ विद्यमान हैं । अतः इनका उपयोग यदि उचित रूप से नहीं किया गया, तो ये ही बजाय लाभदायक होने के हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं । जैसे अग्नि का स्वभाव है जलाना, प्रकाश देना, ठण्ड से बचाना तथा अन्न को पकाना, पचाना आदि परन्तु यदि कोई

जाने-अनजाने अपना हाथ अग्नि में डाल दे, तो क्या वह अग्नि उस हाथ को जलाये बिना रह सकती है ? कदापि नहीं । इसी प्रकार अन्य सब तत्वों का अपना अलग-अलग स्वभाव है । अतः इनका विधिवत् प्रयोग करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है । इसी उद्देश्य से भगवान् शङ्कर ने इन स्थूल तत्वों का उपयोग समझाने के लिये स्थूल रूप में मदिरा (अग्नि-तत्व) मांस (पृथ्वी-तत्व), मीन (जल-तत्व), मुद्रा (वायु-तत्व) और मैथुन (आकाश-तत्व) का आविर्भाव 'पंच-मकारों' के नाम से तंत्र-शास्त्र में किया है तथा इन तत्वों का सेवन-विधान भी बतलाया है । यदि इनका सेवन विधिवत् नहीं हुआ, तो इनके सेवन करनेवाले की वही दशा होगी, जो अग्नि में हाथ डालनेवाले की होती है । इसका विशद विवेचन ऊपर किया जा चुका है । अब स्पष्ट हो गया कि मुख्य तत्त्व पाँच होने से 'मकार' भी पाँच ही माने गये हैं, न्यूनाधिक नहीं ।

प्र० आपने पंच-मकारों का जो रहस्य समझाया है, वह यों तो समझ में आ गया, पर फिर भी शंका अब तक कुछ-कुछ बनी हुई है । पूरा संशय दूर नहीं हुआ है ।

उ० भगवान् कृष्ण ने भी गीता में कहा है कि 'संशयात्मा विनश्यति ।' इसके लिये आप एकान्त में बैठकर जो कुछ सुना है, उस पर विचार कीजिये; मनन कीजिये, आपका संशय दूर हो जायगा । 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः' मन ही मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष का कारण है । अतः इसको शुद्ध कीजिये ।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

परिशिष्ट

(अ) 'चण्डी' के दो सम्पादकीय

१ पञ्च-मकारों का महत्व

"यह एक निर्विवाद बात है कि शाक्त-धर्म में पच-मकारों को विशेष महत्व प्राप्त रहा है। उनके बिना शाक्त-धर्म निष्प्राण-सा प्रतीत होगा। ऐसे महत्वपूर्ण मकारों का खुलकर प्रतिपादन करने में बड़े-बड़े कौलाचार्य झिझकते रहते हैं क्योंकि पिछली शताब्दियों में इन मकारों में से आदि के दो 'मकारों' 'मद्य' और 'मांस' का घोर विरोध ही इस देश में नहीं हुआ अपितु उनका निषेध करने में क्या धार्मिक, क्या सामाजिक और क्या राजनैतिक—प्रायः सभी प्रकार के प्रतिबन्धों को प्रयोग में लाया गया। इन प्रतिबन्धों के फल-स्वरूप 'मद्य-मांस' का सेवन करना अवश्य सीमित हो गया और लोग छिपकर इन्हें प्रयोग में लाने लगे। 'मद्य-मांस' के विरोधियों की शक्ति क्षीण होते ही इन दोनों के प्रेमी पुनः पूर्ववत् खुलकर इनका सेवन करने लगे, किन्तु जो धर्म के अंकुश को माननेवाले थे, उन्होंने इनके प्रति 'गोपनीयता' का भाव बनाये रखना ही उचित माना। यही कारण है कि पक्के शाक्त-धर्मावलम्बी तक प्रकट रूप में आज भी उक्त मकारों का समर्थन करने में अपने को असमर्थ सा पाते हैं।

'चण्डी' पत्रिका के द्वारा 'गोपनीयता' के इस भ्रामक जाल को छिन्न-भिन्न करने का निरन्तर प्रयास किया गया है, जिसका प्रमाण गत वर्ष की उसकी फाइलों को पढ़कर सहज ही जाना जा सकता है। इस प्रयास में जिन महानुभावों ने 'चण्डी' को अपना सहयोग प्रदान किया है, उनमें पूज्य श्री

स्वामी दिव्यानन्द जी का प्रमुख स्थान रहा है। आपने पञ्च-मकारों का खुलकर सदैव समर्थन किया है और इन्हीं की प्रेरणा से इस (२०२६) वर्ष की 'चण्डी' में पाँचों मकारों के स्थूल रूप में ग्रहण करने के औचित्य पर बल दिया गया है।

'पञ्च-मकारों' में से एक 'मुद्रा' अर्थात् अन्न-मय पदार्थों के प्रयोग के सम्बन्ध में तो कभी कोई विवाद रहा ही नहीं है। शेष चार मकारों के उपयोग करने में आज उच्छृङ्खलता का जो परिचय देश-वासियों द्वारा दिया जा रहा है, उसे यहाँ स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ केवल इतना ही कहना अभीष्ट है कि इन मकारों का 'संयमित' और 'मर्यादित' रूप में प्रयोग कर शाक्त-साधक सहज ही भोग और मोक्ष को करतल-गत कर लेते हैं। इसी तथ्य का स्पष्टी-करण करने के लिये इस वर्ष की 'चण्डी' में पञ्च-मकार-विषयक साहित्य विशेषतया प्रकाशित किया गया है।

इस प्रकाशन का श्रेय पूज्य श्री स्वामी दिव्यानन्द जी को ही है। अतः हम यहाँ उनका बारम्बार सादर अभिनन्दन करते हैं।"

२ पञ्च-मकारों की दार्शनिक व्याख्या

'पञ्च-मकारों' के स्थूल रूपों को लेकर ही इस वर्ष की 'चण्डी' में उपयोगी साहित्य प्रकाशित करने की चेष्टा की गई है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उनके सूक्ष्म रूपों का कोई महत्व नहीं है। इसके विपरीत सच तो यह है कि उनके सूक्ष्म रूपों का ही सर्वाधिक महत्व है। सूक्ष्म रूप वस्तुतः 'आधार'-वत् हैं, जिनके सहारे स्थूल रूपों का अस्तित्व स्थिर रहता है। ऐसी दशा में पञ्च-मकारों के सूक्ष्म रूपों को हृदयङ्गम करना प्रत्येक साधक के लिये परमावश्यक है। 'पञ्च-मकारों' के सूक्ष्म रूपों का परिचय तभी मिल सकता है, जब इन 'मकारों' की दार्शनिक व्याख्याओं को पढ़ा-समझा जाय। आजकल के सामान्य साधु-महात्माओं की कौन कहे,

कट्टर शाक्त-धर्माचार्य भी पञ्च-मकारों की चर्चा चलने पर इनके दार्शनिक स्वरूपों की व्याख्या करने लगे हैं। स्थूल पदार्थों मद्य-मांसादि की वे भी निन्दा करते पाये जाते हैं। ऐसी दशा में पाठकों को 'मकारों' के सूक्ष्म स्वरूपों का थोड़ा-बहुत ज्ञान अवश्य होगा, ऐसी आशा प्रायः सभी को होगी। इसी से 'चण्डी' के इस वर्ष (२०२६) के अङ्कों में पञ्च-मकारों पर जो साहित्य प्रकाशित किया गया है, उसमें मकारों के दार्शनिक पक्ष की उपेक्षा-सी की गई है। फिर भी श्री कापालिक उद्बोधनानंद जी के लेखों तथा अन्य लेखों से भी इस पक्ष का कुछ दर्शन तो पाठकों के समक्ष आ ही गया है।

(ब) मांस-भक्षण पर व्यावहारिक उपयोगी चर्चा

दुनिया में बड़े जीव छोटे जीव को खाकर जीते हैं। बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। पशु-पक्षी भी उसी तरह छोटे अर्थात् कीड़े-मकोड़ों को खाते हैं। गाय, भैंस, भेड़ जैसे पशु मांस नहीं खाते। प्रकृति ने उनको मांस खाने में सहाय-भूत होनेवाले दाँत या नाखून नहीं दिये हैं जैसे सिंह, श्रृगाल और कुत्ते आदि को दिये हैं। मनुष्य को चार दाँत ऐसे दिये हैं, जो बताते हैं कि मनुष्य मांस-भक्षी है।

कहा जाता है कि मांस खाने से जीव-हिंसा होती है, अतएव मांस नहीं खाना चाहिये, लेकिन श्री जगदीशचन्द्र वसु ने विज्ञान द्वारा सिद्ध कर दिया है कि पेड़-पत्तों में भी जीव है। अन्न में भी जीव है। तभी तो उस में से दूसरे अन्न पैदा होते हैं। हवा में जीव होने से श्वास द्वारा भी जीव शरीर के भीतर जाते हैं। कई खाद्य पदार्थों में जीव होते हैं, जो आँख से नहीं दिखते किन्तु यदि सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र से देखा जाय, तो असंख्य जीव दिखेंगे। अतएव मांस न खाने-वाले भी जीव-हिंसा तो करते ही हैं।

सारी दुनिया में ढाई अरब की आबादी में मांस न खानेवाले मात्र जैन, कुछ ब्राह्मण और कुछ वैश्य हैं। इसलिये मनुष्य मांस-भक्षी नहीं है,

यह नहीं कहा जा सकता । भगवान् श्री रामचन्द्र जी भी मांस खाते थे। जो मांसाहारी नहीं होते, वे शिकार भी नहीं करते और शिकार करके चमड़ा साफ करना तो कोई भी पसन्द नहीं करता । श्रीरामचन्द्र जी जङ्गल में धनुष-बाण सिर्फ मनुष्य का वध करने के लिये ही नहीं रखते थे ।

भगवान् श्रीकृष्ण क्षत्रिय थे और कौल भी । अतएव वे भी मांस खाते थे । प्राचीन काल में ऋषि-मुनि सभी मांस खानेवाले थे । श्री भर्तृहरि को उनके गुरु ने मांस खाने की आज्ञा दी थी । तब किसी ने भर्तृहरि से कहा कि 'मांस खाने से काम जागृत होता है अतएव मांस नहीं खाना चाहिये ।' श्री भर्तृहरि ने उससे पूछा :—

सिंहो बलि-द्विरद-शूकर-मांस-भोजी ।
सम्वत्सरेण रतिमेति किलैक-वारं ।।
पारावतः कण-शिलाश्वर-मात्र-भोजी ।
कामी भवतनुदिनं वद काऽत्र हेतुः ।।

यदि मांस खाने से ही काम जागृत होता है, तो सिंह हाथी और शूकर का मांस खाकर भी सिंहनी के साथ मात्र एक वर्ष में एक बार रति करता है और कबूतर पत्थर-कण खाकर भी सारा दिन कामी बनकर फिरता है ! इसका कारण क्या है ?

ये सब बातें एक साथ विचारी जाँय, तो मनुष्य मांस नहीं खा सकता, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है —

सशक्त मनुष्य को विकार कम होता है और कमजोर को अधिक होता है । कहावत है 'कमजोर और गुस्सा भारी ।' खून का वेग मस्तिष्क के विचार पर आक्रमण करता है, तब क्रोध आता है । अण्ड-कोष पर खून का दबाव पड़ने से काम जाग्रत् होता है । जिस मनुष्य में धारणा-शक्ति अधिक है, उसका खून जल्दी नहीं उबलेगा और विकार भी नहीं जागेगा ।

तामसी भोजन से ही विकार होता है, यह बात नहीं मानी जाती ।

सात्विक भोजन वही है, जो सुपाच्य है। पोषण के निमित्त कोई भी चीज खाने से विकार नहीं होता। कच्चा मांस सुपाच्य है लेकिन ज्यादा खाने से अन्न की अपेक्षा उसका अजीर्ण भयङ्कर होता है। मात्रा में लेने से अमृत का काम देता है। हींग, मिर्च, लहसुन, प्याज, उड़द की दाल इत्यादि से मांस ज्यादा तामसी नहीं है। जिन पशु-पक्षियों में अधिक चर्बी है, वे अधिक तामसी हैं। गो-मांस तामसी है। बकरे का मांस तामसी नहीं है।

कई लोगों का कहना है कि मद्य-मांसादि के सेवन से शारीरिक व्याधियों के उत्पन्न होने का भय है। यह बात भी ठीक नहीं। शारीरिक व्याधियाँ वस्तुतः कर्म-भोग हैं। मद्य-मांसादि की तो बात ही क्या, जो लोग लहसुन-प्याज तक नहीं छूते, वे भी बहु संख्या में यकृत या वायु-विकार से ही नहीं, अपितु कैंसर, टी० बी०, हैजे आदि महामारियों से पीड़ित होते आये दिन दिखाई पड़ते हैं। जिस युग में दूषित या मिलावटी पदार्थों का नाम तक नहीं था, उस युग के मनुष्य क्या व्याधियों के शिकार नहीं होते थे? ऐसी दशा में व्याधियों के लिये भी मद्य-मांसादि को जिम्मेदार ठहराना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

कौल-धर्म क्या है ?

(स्थूल रूप)

वामे रामा रमण-कुशला, दक्षिणे चालि-पात्रम् ।
अग्रे मुद्रा चणक-वटका शूकरस्योष्ण-शुद्धिः ॥
तन्त्री वीणा सरस-कविता, सद्गुरु-सद्कथानाम् ।
कौलो धर्मो परम गहनो, योगिनामप्यगम्यम् ॥

कौल धर्म बड़ा ही रहस्यपूर्ण धर्म है । योगी तक उसे समझ नहीं पाते । कौल साधक के वाम भाग में क्रीडा-कुशल स्त्री रहती है, दक्षिण भाग में मद्य-पात्र रहता है, अग्र भाग में शूकर का उष्ण मांस और चना तथा बड़े आदि मुद्रा के पदार्थ रहते हैं । साथ ही मधुर संगीत के साथ काव्य-पाठ होता रहता है, सद्गुरुओं की चर्चा चलती रहती है । इस सबका रहस्य साधारण जन क्या, विज्ञ पुरुष भी नहीं समझ सकते । केवल साधक ही समझ सकते हैं ।

(सूक्ष्म रूप)

कुल औ अकुल दोऊ मेलवे की रीति जाने,
ताको नाम कौल शिव-ग्रन्थन में गायो है ।
महानन्द मङ्गल प्रहलादनन्द विश्वनाथ,
नन्द चिदानन्द ज्येष्ठनाथ हू बतायो है ॥
विश्वेश्वर पृथ्वीधर लघु विद्यारण्य पुनि,

नाम कुलाचार्य एते जग में कहायो है।
ऐसो कौल परम धर्म ताके परे धर्म ताई नाहिं,
तामे एते कौलकान पर्म पद पायो है ॥

कुल (मूलाधार चक्र) में स्थित कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर उसे अकुल (सहस्रार चक्र) में स्थित परम शिव से संयुक्त करने की विधि को जो साधक जानता है, उसको कौल कहते हैं। महानन्द आदि कुछ एक सिद्ध कौल आचार्यों के नाम हैं। यह कौल धर्म परम धर्म है। इसके परे संसार में अन्य कोई धर्म नहीं है। इस धर्म के द्वारा परम पद अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

उपयोगी प्रकाशन

वाम-मार्ग	४)
मन्त्र-सिद्धि के उपाय	२)
साधना-रहस्य	१५)
पारायण-विधि	२)
मुद्राएँ एवम् उपचार	३)
तान्त्रिक-पञ्चाङ्ग	४)
हिन्दी तन्त्रसार	१०)
हिन्दी कौलावली निर्णय	५)
हिन्दी शाक्तानन्द तरंगिणी	३)५०
हिन्दी कुलार्णव	३)
शतचण्डी-विधान	३)७५
शाक्त-दर्शन	३)
शाक्त-धर्म क्या है ?	३)
भगवती गीता	५)
चक्रपूजा (श्री बाला-नित्यार्चन)	४)
चक्र-पूजा के स्तोत्र	१)५०
श्रीनाथादि गुरु-त्रयं	३)५०

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६